2. 'गोदान ' की संरचना

भारतीय उपन्यास मध्यवर्ग का महाकाव्य न होकर किसान चेतना की महागाथा है--इस स्थापना को जिन भारतीय उपन्यासों से विशेष बल मिला है, उनमें 'गोदान ' अन्यतम है। प्रेमचन्द की सबसे महत्त्वपूर्ण कालजयी कृति तो वह है ही, हिन्दी उपन्यास और व्यापक अर्थ में भारतीय उपन्यास के इतिहास में भी उसका अद्वितीय महत्त्व है। प्रसिद्ध कन्नड़ उपन्यासकार यू.आर. अनन्तमूर्ति ने पिछले दिनों भारतीय उपन्यास की भारतीयता जैसा सवाल उठाते हुए यह खास स्थापना की है कि उपन्यास इस विशेष अर्थ में सार्वभौमिकता पर एक तरह का आक्रमण है। इस खास मांग को महज आंचलिकता के तर्क से समझना कठिन होगा। हालाँकि अपनी बात स्पष्ट करने के लिए अनन्तमूर्ति ने जिन लेखकों का हवाला दिया है---- प्रेमचन्द, कारंत और रेणु--- वे क्षेत्र या अंचल-विशेष की संवेदना से गहरे स्तर पर सम्पन्न रहे हैं। 'गोदान ' उपयुक्त कृति है जिसकी संरचना के विश्लेषण के बहाने हम देख सकते हैं कि आचंलिकता को जीवन या परिप्रेक्ष्य के बोध से सम्पन्न करने वाली सार्थक विशिष्टता क्या है !

कहना न होगा कि 'गोदान ' किसान-जीवन के संघर्ष की ऐसी कहानी है जिसमें भारतीय समाज के दूसरे रूपों की भी झलक मौजूद है। 'गोदान ' की संरचना या बनावट में जो फाँक दिखायी देती है :शहर और गांव की कहानी के साहचर्य या समक्षीकरण के कारणः वही इस उपन्यास की चारित्रिक विशिष्टता भी है तथा उसका ऐतिहासिक सामाजिक आधार भी है। इस उपन्यास का फैलाव महत्त्वपूर्ण है--उससे प्रगीत के संगठन या अन्विति की मांग नहीं की जा सकती ! पर वह कवि-दृष्टि से वंचित नहीं है। उसकी तुलना अन्तर्मुखी मनोविज्ञान-केन्द्रित उपन्यासों से करना भी साहित्यिक न्याय के विरुद्ध होगा। 'गोदान ' की कहानी ढीली-ढाली शिथिल कथा है जिसे भारतीय समाज की मन्द-मन्थर गति या लय के अनुरूप कहा जा सकता है। इधर भारतीय उपन्यास को परिभाषित करने के लिए इसी 'मन्द-मन्थर गति ' या 'लय ' की ओर इशारा किया गया है। 'गोदान ' किसान-चेतना की महागाथा ही नहीं है, वह स्त्री-चेतना की महत्त्वपूर्ण गाथा भी है। डॉ. रामविलास शर्मा ने इधर अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनका युग ' के नये संस्करण में इस तथ्य पर बल दिया है कि 'गोदान ' की ट्रैजेडी केवल एक के चरित से नहीं, दोनों (होरी-

धनिया) के चरित से मिलकर बनी है। 'गोदान ' के पुनर्मूल्यांकन में इस पहलू पर भी विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

यह केवल संयोग नहीं है कि 'गोदान ' के आरम्भ और अन्त में स्वीकृति के अर्थ में मृत्यु का संकेत है। पहले मृत्यु का आभास और फिर प्रत्यक्ष त्रासद उपस्थिति ! एकदम आरम्भ में होरी धनिया के बीच कठिन संघर्ष के अहसास के साथ हास्य-विनोद के क्षण आते हैं। पर जैसा प्रेमचन्द ने संकेत किया है, इस क्षणिक मृदुता को यथार्थ की आँच में झुलसते देर नहीं लगती। होरी का कहना कि---'साथ तक पहुँचने की नौबत न आने पायेगी धनिया ! इसके पहले ही चल देंगे !'---आनेवाली कठोर मृत्यु का पूर्वाभास नहीं तो और क्या है ! और धनिया के लिए पहले ही कहा जा चुका है : 'छत्तीसवां ही साल तो था; पर सारे बाल पक गये थे, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। सारी देह ढल गयी थी, वह सुन्दर गेहुँआ रंग सँवला गया था और आँखों से भी कम सूझने लगा था !'' 'गोदान ' की ट्रेजेडी की व्याख्या करते हुए रामविलास जी ने ठीक ही कहा है कि कथा ट्रैजेडी है या नहीं, यह मृत्यु पर निर्भर नहीं है ! धनिया का चरित्र होरी से कम ट्रैजिक नहीं है। ('प्रेमचन्द और उनका युग ', पाँचवां परिवर्धित संस्करण, पृ.244) उपन्यास के अन्त में तो मृत्यु की उपस्थिति है ही ! धनिया ने मौत की सूरत देखी थी। उसे पहचानती थी। उसे दबे पाँव आते भी देखा था, आंधी की तरह भी देखा था। .. वह आधार जिस पर जीवन टिका था जैसे खिसका जा रहा था। ' .. 'होरी की चेतना लौटी। मृत्यु समीप आ गयी थी; आग दहकने वाली थी। धुआँ शान्त हो गया था।' विचारणीय है कि इस ढीली-ढाली कथा के शिथिल विस्तार को संगठित करने वाला सन्दर्भ मृत्यु है या कि जीवन में ही निहित संघर्ष की निरन्तरता ! आखिर मृत्यु के ठीक पहले होरी के मन में विजय की यह अनुभूति हुई ही थी—'कौन कहता है, जीवन-संग्राम में वह हारा है।' यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजयपताकाएँ हैं।

'गोदान ' पर विचार करते हुए अन्तर्वस्तु के साथ गठन या संरचना का प्रश्न अनिवार्य रूप से उठेगा। वह न केवल प्रेमचन्द की महत्त्वपूर्ण अन्तिम कृति है (इस दृष्टि से कि 'मंगलसूत्र' उनका अधूरा उपन्यास है) बल्कि हिन्दी में यथार्थवादी कथा परम्परा के प्रवर्त्तन की दृष्टि से भी सबसे अधिक उल्लेखनीय रचना है। विधा की दृष्टि से 'गोदान' पर विचार करने वालों में कथाकार निर्मल वर्मा महत्वपूर्ण हैं जिनके अनुसार

प्रेमचन्द्र ने एक योरोपीय विधा को परीक्षित किये बगैर ही ज्यों का-त्यों अपना लिया। उसमें अपनी जरूरतों के अनुसार कुछ नया जोड़ा ही नहीं। उन्हीं के शब्द हैं : 'एक तरफ प्रेमचन्द की गहन अर्न्तदृष्टि है जो गोदान के पात्रों ने उन्हें दी है। दूसरी तरफ एक ऐसी बनी-बनायी विधा को अपनाने की मोहजनक सुविधा है जिसका इन पात्रों के संस्कारों, व्यक्तित्व, जातीय अनुभवों, उनकी जीवनधारा से कोई सम्बन्ध नहीं। ' ('शब्द और स्मृति ', पृ. 54) महत्त्वपूर्ण लगने वाला यह निरूपण दरअसल एक तरह का सरल निरूपण है-- सरल और Reductive -- जो रूप को ही वस्तु मान लेने या वस्तु को रूप मान लेने के परिचित पूर्वग्रह का परिणाम है। जिनकी दृष्टि 'गोदान' के समय के भारतीय समाज, 'गोदान ' की गहरी स्थानीयता पर है, वे देख सकेंगे कि प्रेमचन्द ने उपन्यास-रूप में क्या नया जोड़ा है। उनके लिए अनिवार्य होगा कि 'गोदान ' की संरचना पर विचार करते हुए वे वस्तु-रूप की द्वन्द्वात्मकता (Dialactic) को महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ मानकर चलें। उपन्यास को जिस अर्थ में सर्वाधिक मिश्रित (Impure) विधा या कला कहा गया है या जिस अर्थ में कहा गया है कि उसका ढाँचा पूरी तरह बना ही नहीं, निर्मित ही नहीं हुआ और जो हर नये दौर में नये सिरे से बनने के लिए बेचैन रहता है-- इस दृष्टि से भी यह देखना कठिन नहीं है कि प्रेमचन्द ने 'गोदान ' तक आते-आते उपन्यास-रूप में क्या नया जोड़ा है ! सम्भव है हमारी आलोचनात्मक शब्दावली में उस नयी विशिष्टता या अन्य सम्बन्धित विशेषताओं के लिए उपयुक्त शब्द मौजूद न हों।

चूक उनसे भी हुई है जो पूछते हैं कि 'गोदान ' में गांव की कथा तो है पर गाँव कहाँ है ! बेलारी उन्हें रूप-आकारहीन जान पड़ता है और इसीलिए अप्रामाणिक लगता है। यह उसी तरह की आपत्ति का दूसरा रूप है जो नन्ददुलारे वाजपेयी की 'गोदान '-सम्बन्धी आलोचना में इस रूप में दर्ज है। 'गोदान ' उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड़े मकान के दो खण्डों में रहनेवाले दो परिवारों के समान हैं जिनका एक-दूसरे के जीवन-क्रम से बहुत कम सम्पर्क है। 'गोदान ' का ढीला-ढीला रूपबन्ध, उसकी संरचनात्मक खामियाँ, कई प्रसंगों में फिल्मी लटकों का-सा उपयोग, मूलकथा पर पड़नेवाले अवान्तर प्रसंगों का दबाव, चरित्र-चित्रण की प्रणाली में प्रत्यक्ष और प्रातिनिधिक पर विशेष बल-- इन सारी स्थितियों को एक विशेष समय के सामाजिक संक्रमण से सम्बद्ध करके देखना जरूरी होगा अन्यथा हम 'गोदान ' की संरचना की व्याख्या अलग कर रहे होंगे और 'गोदान ' की सामाजिकता पर विचार अलग कर रहे होंगे। प्रेमचन्द की भी आखिर 'उपन्यास ' के बारे में अपनी एक

अवधारणा थी। उन्होंने लिखा था--- 'भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते हैं, भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा। तब यह काम उससे कठिन होगा, जितना अब है।' क्या प्रेमचन्द ने यह कठिन काम करने की दिशा में कोई पहल की? 'गोदान ' की संरचना पर विचार करने के लिए यह भी एक जरूरी संकेत है।

पहले 'गोदान ' के रूपबन्ध के बारे में कुछ और बातें। विचारणीय है कि किसान-जीवन का महाकाव्य या किसान-जीवन की महागाथा होते हुए भी 'गोदान ' में होरी की कहानी को और अधिक विस्तार क्यों नहीं दिया गया ! होरी की कथा 'गोदान' में आधे से भी कम जगह घेरनेवाली कथा क्यों है! यह सवाल पहले भी पूछा गया है। क्या 'गोदान ' की रचना के समय प्रेमचन्द का ध्यान इस ओर नहीं गया या होरी का जीवन था ही घटनाशून्य या प्रेमचन्द के होरी-जैसे चरित्र के आकलन में ही कोई कमी थी! क्या यह अनुभव और पर्यवेक्षण की सीमाओं के कारण हुआ! ये सवाल उसी द्विधाविभक्त मनोविज्ञान से प्रेरित हैं जिसके अन्तर्गत संरचना का सन्दर्भ अलग है और सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ अलग! होरी की ट्रैजेडी अकेले जीवन की या एक व्यक्ति के पारिवारिक जीवन की कोई अलग-थलग नहीं है-- वह घटित हो रही है एक ऐसे व्यापक भारतीय समाज में जिसमें जीवन-पद्धति या जीवन-स्तर या जीने के साधनों की दृष्टि से बड़ी भिन्नताएँ हैं। हाशिये पर दिखनेवाला उच्चवर्ग परजीवी होकर भी केन्द्र की जीवनधारा को दूर तक प्रभावित करनेवाला है। जहाँ तक औपन्यासिक ढाँचे में उस वर्ग के चरित्र-निरूपण का सवाल है प्रेमचन्द उन्हें लगभग एक अलबम में रखे चरित्रों की तरह दिखाते हैं। अधिक-से-अधिक उनकी प्रातिनिधिक वर्गीय अभिलाक्षणिकता का संकेत है। कथाव्यापार में इससे अधिक संलग्नता का प्रमाण वे नहीं देते। उनके क्रियाकलापों को बहुत स्पष्ट मूर्त्तता भी प्राप्त नहीं है जो उनके व्यक्तित्व विधान में खास भूमिका निभाती हो। लुकाच की भाषा में कहा जाय कि वे हिस्सेदार (Participant) नहीं हैं, महज दर्शक (Observer) हैं। उनकी व्यवस्था भी बस इसलिए चल रही है कि अभी प्रतिरोधक शक्तियाँ आगे नहीं आयी हैं। पर उस व्यवस्था की अपनी क्रूरता किसी से छिपी नहीं है।

'गोदान ' में गौर करने की चीज यह है कि होरी का संघर्ष जितना वर्णित है, उतना ही नहीं है। उसका चरित्र इस हद तक प्रातिनिधिक भी नहीं है कि सपाट जान पड़े। विश्वनाथ नरवाणे ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द : हिज लाइफ एण्ड वर्क ' में सीधे शब्दों

में प्रेमचन्द के चरित्रों को अविश्वसनीय बताया है क्योंकि वे अपनी स्वाधीनता का कोई प्रमाण नहीं देते। उनकी दृष्टि में प्रेमचन्द के सभी चरित्र किसी-न-किसी साँचे में ढले हुए हैं-- चाहे वह 'गोदान' का होरी हो या 'रंगभूमि ' का सूरदास या 'प्रेमाश्रय ' का प्रेमशंकर। पूरनचन्द्र जोशी ने नरवाणे के इस पूर्वग्रह पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है--- 'प्रेमचन्द की जो शक्ति है या गुणात्मक विशेषता है उसी को नरवाणे ने उनकी कमजोरी समझा है। इसका मूल कारण है कि नरवाणे सौन्दर्यशास्त्र को सामाजिकता से अलग करके देखते हैं।' (परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम', पृ.132) नरवाणे को वह भी आपत्ति है कि 'गोदान ' में प्रेमचन्द कोई सुसंगत संश्लिष्ट जीवन-दर्शन नहीं दे सके। प्रेमचन्द के विचार क्या हैं-- बस असम्बद्ध प्रतिक्रियाएँ। वे कथा की एकाग्रता या अन्विति में भी बाधक हैं। आपत्ति यह है कि प्रेमचन्द कथा में स्वयं हस्तक्षेप करते हैं और किस्सागोई (Narration) से वर्णनात्मकता (Description) पर आ जाते हैं और यह भी उन्हें गहरी कलात्मकता या सर्जनात्मक सफलता से वंचित कर देता है। एक तरह से देखा जाय तो इन समस्त पूर्वग्रहों या आपत्तियों की प्रकृति एक है। ये आपत्तियाँ संरचना-सम्बन्धी प्रश्नों को अलग और 'गोदान ' की सामाजिकता के प्रश्न को अलग रखने की विडम्बना से पैदा हुई हैं।

महान कला का एक लक्ष्य यह भी बताया गया है कि वह उस सम्पूर्ण जटिल यथार्थ को प्रत्यक्ष करे जिसमें अनेक प्रकार के अन्तर्विरोध (वैयक्तिकता-सामाजिकता, व्यापकता-गहनता, विशिष्ट-सामान्य, आभास-यथार्थ, तात्कालिक-सुदूर) गहरे अन्तर्गठन में घुले-मिले हों। क्या यह कलात्मक पूर्णता प्रेमचन्द का आदर्श है! शायद एक हद तक ही। कथा सूत्रों का दुहरापन और चरित्रों का समीकरण (Juxtaposition) प्रेमचन्द की बुनावट की परिचित विशेषताएँ हैं। होरी की कहानी रायसाहब की कहानी से भी जुड़ी है और मेहता-मालती की कहानी से भी। गोबर की कहानी तो उसमें अन्तर्भुक्त है ही-- चाहे तनाव के स्तर पर ही! उसकी कहानी मेहता-मालती कथासूत्र से भी जा मिलती है। गोबर को शहर में शरण मेहता के यहाँ मिली ही है। मीनाक्षी मुखर्जी ने कथा का ग्राफ बनाते हुए दिखाया है कि बस दो कथासूत्र परस्पर नहीं मिलते--गोबर की कहानी रायसाहब की कहानी को नहीं छूती-- हालांकि यह बात सर्वथा प्रकट है कि होरी पर गोबर का सारा गुस्सा रायसाहब-- जैसों के साथ उसके जुड़ाव को लेकर ही है। उपन्यास में कहीं होरी-गोबर आमने-सामने हैं, कहीं होरी-धनिया का समक्षीकरण (राग, द्वन्द्व दोनों स्तरों पर) महत्त्वपूर्ण है, कभी होरी के

दुर्भाग्य और रायसाहब के दुर्भाग्य की तुलना की गयी है, कभी मालती की ईर्ष्या का विषय बननेवाली जंगली ग्रामीण लड़की उसके साथ अनोखा तनावभरा रिश्ता बनाती है। (शायद वही तनाव मालती के दमित स्त्रीत्व को अंकुरित करता है) मेहता-मालती, मालती-गोविन्दी, मिर्जा-तन्खा, रायसाहब-राजासाहब का समक्षीकरण कथा को एकरस होने से बचाता है। प्रेमचन्द की यह एक परिचित युक्ति है : जैसे, 'बाहर से वह विलासिनी है, भीतर से वही मनोवृत्ति शक्ति का केन्द्र है; मगर परिस्थिति बदल गयी है। तब मालती प्यासी थी, अब मेहता प्यास से विकल हैं।' कहने की जरूरत नहीं कि प्रेमचन्द के बयान में अनुकृतिमूलकता और दृष्टान्तमूलकता के लिए खासी जगह है। गोबर का बेलारी से लखनऊ जाना भारतीय समाज के जिस संक्रमण का सूचक है, उसे दिखाने के लिए भी समक्षीकरण की युक्ति अपनाई गयी है। सेमरी और बेलारी का आमना-सामना तो रायसाहब और होरी के रूप में होता ही रहता है। प्रेमचन्द सेमरी के रायसाहब के जरिए दिखाते हैं कि अब शोषण के रूप सूक्ष्मतर होते जा रहे हैं। जमींदार और पूँजीपति वर्ग के हितों की एकता शोषण और दमन को तेज करने का प्रबल तर्क है। प्रेमचन्द गांधी की सुधार-सम्बन्धी विचारधारा की सीमाएँ समझ रहे थे पर उनके विचारों में हो रहे परिवर्तन से अप्रभावित न थे। 1922 में गाँधी ने लिखा था: ''शहरों में निवास करनेवाले लोगों को यह नहीं पता कि किस तरह भारत की जनता आधा पेट खाकर निर्जीव होती जा रही है। उन्हें यह नहीं पता कि उनकी दुर्भाग्यपूर्ण सुविधाएँ उन्हें विदेशी शोषकों के लिए किए गए कार्य की दलाली के रूप में प्राप्त हैं और यह समस्त लाभ और दलाली जनता का रक्त चूसकर प्राप्त की जाती है।' गाँव और शहर की कथा की सम्बद्धता महज औपन्यासिक सुविधा नहीं है--वह भारतीय समाज और राजनीति के अन्तर्विरोधों को समझने में, औपनिवेशिक व्यवस्था के 'परजीवी चरित्र को समझने में और भारतीय समाज के अपने उद्वेलन और रूपान्तरण को समझने में (बेशक, जिसकी गति धीमी है) सहायक है।

प्रेमचन्द की विचारधारा में असंगतियाँ हो सकती हैं, अन्तर्विरोध हो सकते हैं, स्त्री के बारे में उनकी मान्यताओं को लेकर आपत्तियाँ उठाई जा सकती हैं पर कहीं-न-कहीं उनका पक्ष गांव की संस्कृति के मूल आधार से जुड़ा है और उनके लिए प्रामाणिकता की कसौटी गाँव के मूल संस्कार हैं। निश्चय ही वह गाँव मैथिलीशरण गुप्त का गाँव नहीं जो सब प्रकार से सुन्दर है और मोहक आदर्श मूल्यों की निर्मिति है। यहाँ गाँव अपने सारे अन्तर्विरोधों के साथ, छल और सच्ची मनुष्यता के साथ, तमाम गुणों और क्षुद्रताओं में प्रेमचन्द के लिए महत्त्वपूर्ण है। होरी-धनिया- जो सबसे प्रमुख चरित्र हैं-

गँवई जिन्दगी के सार तत्त्वों से बने हैं। रही बात प्रेमचन्द के अन्तर्विरोधों की--वे एक खास समय के शिक्षित भारतीय समाज के संस्कारगत द्वन्दों का ही एक रूप है। आधुनिकता का एक ही रूप या अर्थ आधुनिक भारतीय इतिहास के हर दौर में मान्य नहीं रहा। समय और स्थान के अनुभव, निजी और सामूहिक प्रतिक्रियाओं का द्वन्द्व, सम्भावनाएँ और निषेध--इन्हें मिलाकर ही आधुनिकता नहीं आधुनिकताएँ (Modernities) होती हैं। महत्त्वपूर्ण है समय और समाज--जिसमें आधुनिकता विशेष रूप या आकार ग्रहण करती है। होरी के व्यक्तित्व विधान में क्या प्रेमचन्द की कोई विशेष आधुनिक दृष्टि या समझ काम कर रही है। आखिर क्यों प्रेमचन्द 'गोदान ' में आकर एक ऐसे कथानक का निर्माण करते हैं जो दुर्बलताओं--हताशाओं से घिरा है! क्या घटित हुआ। प्रेमचन्द की औपन्यासिक संकल्पना में, कि छद्मविजय से सच्ची पराजय या निराशा मूल्यवान लगने लगी, झूठे समझौतों से सीधा प्रकृत टकराव सार्थक लगने लगा। इसे समझने के लिए ' 30 के बाद की ऐतिहासिक सामाजिक वास्तविकता को ध्यान में रखना जरूरी है।

होरी के संघर्ष के अनुभवों में प्रकृति से लगाव, हास-परिहास, सच और झूठ का मिश्रण भी अर्थ रखता है। अनेक अवसरों पर जिस धनिया से उसका सीधा संघर्ष है वही अपने नारीत्व की सम्पूर्णता से उसे अभयदान दे रही है। धन के वर्चस्व ने आधुनिक समाज में सम्बन्धों का अलगाव पैदा किया है, उससे अलग यहाँ विपन्नता ही 'सोहाग ' को दृढ़ करनेवाला सन्दर्भ है। मार्क्स ने जिस तर्क से मनुष्यता के मूल में मनुष्य के होने पर ही बल दिया था, उसी तर्क से 'गोदान ' में शिक्षितों की बहस और जीवन-पद्धति के समानान्तर इस ग्रामीण स्वभाव के प्रकृत मर्म को समझने की जरूरत है। उपन्यास के शुरू में ही भोला की कमजोरी होरी एक ही बार में पहचान लेता है जब वह उसकी आँखों में स्त्री की लालसा सजग होते देखता है। प्रेमचन्द की दृष्टि में होरी की कमजोरियाँ भी महत्त्वपूर्ण हैं। वे भी उसका चरित्र बनाती हैं। होरी भोला के साथ छल कर रहा था। इसे वह बुरा नहीं मान रहा था। उसकी विनोदवृत्ति भी इस मामले में सजग थी। प्रेमचन्द छल और विनोदवृत्ति को एक अभिन्न तत्व बताते हुए होरी के जीवन-स्वभाव की मीमांसा इस रूप में करते हैं--'इस तरह का छल तो वह दिन-रात करता रहता था।....सन को कुछ गीला कर देना और रुई में कुछ बिनौले भर देना उसकी नीति में जायज था। और यहाँ तो केवल स्वार्थ न था, थोड़ा-सा मनोरंजन भी था। बुड्ढों का बुढ़भस हास्यास्पद वस्तु है और ऐसे बुड्ढों से अगर कुछ ऐंठ लिया जाये तो कोई दोष-पाप नहीं।' निराला के उपन्यास में बिल्लेसुर

आखिर तक यह भ्रम बनाये रहते हैं कि उनके पास सोने की ईंटें हैं। यों वे कठिन भयानक संघर्ष में पूरी जिन्दगी बिता देते हैं। बिरादरी और भैयाचार के नाम पर भारतीय किसान का जो शोषण होता है, उसकी झलक प्रेमचन्द और निराला ने एक ही तरह अपने उपन्यासों में दी है। होरी में औसत किसान की सारी कमजोरियाँ हैं पर साथ ही यह अनिवार्य गुण भी---कि 'होरी किसान था और किसी के जलते हुए घर में हाथ सेंकना उसने सीखा ही न था।'

रायसाहब के आत्मविश्लेषण में या आत्मपक्ष से किए गये वर्गचरित्र के विश्लेषण में प्रेमचन्द का इच्छापूर्ण सोच मौजूद है। 'बड़े आदमियों की ईर्ष्या और बैर केवल आनन्द के लिए है। हम इतने बड़े आदमी हो गये हैं कि हमें नीचता और कुटिलता में ही निःस्वार्थ और परम आनन्द मिलता है! हम देवतापन के उस दर्जे पर पहुँच गये हैं जब हमें दूसरे के रोने पर हँसी आती है।' .. 'लक्षण कह रहे हैं कि बहुत जल्दी हमारे वर्ग की हस्ती मिट जानेवाली है।' प्रेमचन्द छिपाते नहीं कि रायसाहब का यह बयान निरा वाग्जाल है---होरी के मन में सहानुभूति और श्रद्धा उपजाने का हेतु---उपचार मात्र! क्योंकि दूसरे ही पल यह जानकर---कि कहीं विद्रोह और अवज्ञा के लक्षण हैं, तुरन्त दमन के लिए उनकी त्यौरियाँ चढ़ जाती हैं।

होरी से गोबर का पीढ़ीगत भेद या भिन्न मनःस्थिति बताने के लिए प्रेमचन्द इन्तजार नहीं करते! पहली झलक में उसे प्रकट कर देते हैं। गोबर की विद्रोह सम्बन्धी विचारधारा शुरू में ही इतनी सटीक, तर्कसंगत और परिपक्व जान पड़ी है कि आश्चर्य होता है। होरी को वह शुरू से ही लताड़ता रहता है--- 'तुम्हारा यही धर्मात्मापन तो तुम्हारी दुर्गत कर रहा है।' गोबर-झुनिया-प्रसंग भी उपन्यास के शुरू में ही आकार ग्रहण करता है। झुनिया विधवा है। गोबर अपनी सहज दुर्बलता से झुनिया के प्रति आकृष्ट है पर उसे साथ लेकर घर में प्रवेश करने का साहस उसमें नहीं है। यहाँ प्रेमचन्द कोई हड़बड़ी नहीं दिखाते। आकर्षण का प्रभाव बढ़ता है और उसी अनुपात में साथ रहने की बेचैनी भी। मिलने-जुलने के अवसर भी खोज लिए जाते हैं। प्रेमचन्द मनोविकारों का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इस प्रगाढ़तर सम्बन्ध को मूर्त करते हैं। जिन्हें 'गोदान ' की दुनिया स्त्रीविहीन नजर आती है उन्हें धनिया के विद्रोह के साथ धनिया के स्निग्ध प्रेम और गोबर-झुनिया सम्बन्ध की क्रमिक स्थितियों पर विचार करना चाहिए। प्रेमचन्द प्रेमचन्द ही हो सकते हैं शरत या जैनेन्द्र नहीं, पर क्या ऐसे स्थल उनकी संवेदनात्मक समझ और सूक्ष्म पर्यवेक्षण का प्रमाण नहीं! 'झुनिया का

वंचित मन, जिसे भाभियों के व्यंग और हास-विलास ने और भी लोलुप बना दिया था उसके कौमार्य पर ललचा उठा। और उस कुमार में भी पत्ता खड़कते ही किसी सोये हुए शिकारी जानवर की तरह यौवन जाग उठा।' ऐसे स्थल 'गोदान ' में और भी हैं जहाँ प्रेमचन्द स्त्री की कोमल संवेदना को सहज मूर्त कर सके हैं। मातादीन-सिलिया प्रसंग में, जहाँ मातादीन में तो सिलिया के साथ रहने की हिम्मत नहीं है और बच्चे की मौत हो जाती है--- ठीक उसके बाद की स्थिति है: 'एक महिना बीत गया। सिलिया फिर मजूरी करने लगी थी। सन्ध्या हो गयी थी। पूर्णमासी का चाँद विहँसता-सा निकल आया था। सिलिया ने कटे हुए खेत में से गिरे हुए जौ के बाल चुनकर टोकरी में रख लिए थे और घर जाना चाहती थी कि चाँद पर निगाह पड़ गयी और दर्दभरी स्मृतियों का मानो स्रोत खुल गया। अंचल दूध से भीग गया और मुख आँसुओं से।' स्त्रीसुलभ संवेदना के बहाने संकेत है कि प्रकृति भी मनुष्य को सहने की शक्ति देती है। अनुभव-पकी झुनिया और गोबर की अबोधता का समक्षीकरण भी परिस्थिति को समझने में सहायक है। झुनिया ने गोबर में इतनी संवेदना तो जगा ली कि वह पंचायत और बिरादरी से न डरे पर झुनिया को घर में लाने के लिए बहुत समय लगा-- यद्यपि तब भी झुनिया के साथ घर में प्रवेश करने का साहस गोबर में न था। 'गोदान ' की कथा में इस बीच साठ पृष्ठों के भीतर क्या-कुछ घटित हो गया है। बहुत लालसा से जो गाय लाई गयी थी जो गोबर-झुनिया के मिलने का बहाना भी बनी, उसे अपने भाई हीरा ने जहर दे दिया था। यह साधारण मौत न थी-- होरी की आधी मृत्यु थी : 'दस कदम पर मृतक गाय पड़ी हुई थी और होरी घोर पश्चाताप में करवटें बदल रहा था। अन्धकार में प्रकाश की रेखा कहीं नजर न आती थी।' हीरा के घर की तलाशी हो यह होरी के अस्तित्व को माना मिटा देने के लिए काफी था, 'होरी के मुख का रंग ऐसा उड़ गया था जैसे देह का सारा रक्त सूख गया हो।'

प्रेमचन्द उपर्युक्त प्रसंग को छोड़कर दूसरी दुनिया में लौटते हैं--यही 'गोदान ' के ढीले-ढाले रूपबन्ध की विवशता है। कथा-रस की दृष्टि से भी इस अवकाश और अन्तराल के मनोविज्ञान की जाँच की जानी चाहिए। रायसाहब के उत्सव का-सा दृश्य है। होरी जनक का माली बना हुआ है। शगुन के पाँच रुपये देकर। धनुषयज्ञ और प्रहसन। जहाँ बौद्धिकों की भद्रवर्गीय विचारधारा के अनेक अन्तर्विरोध हैं, मेहता सीधे यह सवाल उठा सकते हैं--हम या तो साम्यवादी हैं या नहीं हैं। यहाँ नकली जीवन का ही तो सारा खेल है और मेहता को इसी जीवन से एतराज है। बहस चल रही है ऊँच-नीच पर, आदर्शवाद और सिद्धान्तवाद पर, धन की प्रमुखता पर, मुक्त

भोग और विवाह पर। क्या भाषा और क्या व्यवहार--सर्वत्र स्वाँग-ही-स्वाँग! फिल्मी वातावरण है। अफगान वेश में मेहता मालती का अपहरण किए जा रहे हैं और सबको साँप सूँघ गया है। मालती के मन में स्वाँग किए हुए अफगान वेश वाले मेहता के लिए नया ही आकर्षण पैदा हुआ है। प्रेमचन्द मेहता के प्रति मालती के आकर्षण को स्वाँग से अधिक महत्त्व नहीं देते पर मालती के प्रति आकर्षण कहाँ ठोस भूमि पर स्थित है इसे तमाम फालतू अनावश्यक (Superfluous) दिखनेवाले ब्यौरों में भी अलक्ष्य नहीं रहने दिया गया है। जंगली ग्रामीण युवती के प्रति मेहता का खिंचाव देखकर मालती में जो डाह पैदा हुआ है वह भी मालती के व्यक्तित्व पर आरोपित आधुनिकता की हँसी उड़ाता है। यहाँ वह शिक्षित आधुनिका नहीं, साधारण-कमजोर-औसत-घरेलू-गँवार नजर आती है।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द की सहानुभूति सभी पात्रों के प्रति एक-सी नहीं है। वे सभी पात्रों के मर्म में शायद प्रवेश भी नहीं कर सके हैं। इसके लिए उनके अपने संस्कार, अपना समय और समाज जिम्मेदार है--अधूरी आधुनिकता के प्रति चकाचौंध और अनेक स्तरों पर पिछड़ेपन से आक्रान्त। प्रेमचन्द की इस खास दुर्बलता को छिपाने की जरूरत नहीं। यह दुर्बलता न होती तो 'गोदान 'का सम्पूर्ण संगठन भिन्न प्रकार का होता और इसी अर्थ में उसका संरचनात्मक प्रभाव भी। यहाँ बहुत से प्रसंगों को कथा का फैलाव समेट तो लेता है लेकिन मूलवस्तु की आन्तरिक सघनता को कहीं अवरुद्ध भी करता है। मानव व्यवहार तथा ऐतिहासिक सामाजिक वास्तविकता के अध्ययन-सूत्र पूरे उपन्यास में बिखरे हैं--जरूरी नहीं कि उन सबका उपयोग मूल कथा-संवेदना को प्रगाढ और तीव्रतर बनाता हो। इन्हीं संकेतों में कहीं मनोवैज्ञानिक चमक है, कहीं बौद्धिक तीक्ष्णता और कहीं संकेत नहीं, महज ब्यौरे हैं--निष्क्रिय, तटस्थ। ऐसी महत्त्वपूर्ण कृतियों की विफलताएँ भी विचारणीय होती हैं। पर उनका अध्ययन अधिक सावधानी की मांग करता है।

'गोदान ' के अन्त जैसे प्रसंग में अर्थात् मृत्यु के निरूपण में ही प्रेमचन्द का कविहृदय सजग नहीं है। उपन्यास के कई साधारण प्रतीत होते प्रसंगों में प्रेमचन्द एक बड़े कथाकार की कवि-दृष्टि का आभास देते हैं। जिस क्षण झुनिया घर में प्रवेश करना चाहती है, धनिया और होरी उसके एकदम विरुद्ध हैं। पर भीतर-भीतर द्रवित। जहाँ धनिया कहती है--'मैं तुमसे कहे देती हूँ, मैं अपने घर में न रखूँगी। गोबर को रखना हो, अपने सिर पर रखे। घर में ऐसी छत्तीसियों के लिये जगह नहीं है और अगर तुम

बीच में बोले तो फिर या तो तुम्हीं रहोगे या मैं ही रहूँगी।' कहना कठिन है यह कितना प्रकृत क्रोध है और कितना छद्म क्रोध है। प्रेमचन्द एक बड़े लेखक की तरह पहचान रहे हैं कि ऊपर से कठोर दिखने वाले इन शब्दों के पीछे धनिया के हृदय की तरलता है कैसी! होरी भी तैयार है कि घसीटकर उसे बाहर कर देगा। पर जब उपयुक्त क्षण आता है धनिया का स्वर बदल जाता है--'तुम उसका हाथ पकड़ोगे तो वह चिल्लायेगी--इतनी रात गये अँधरे सन्नाटे में जाएगी कहाँ....किसी ने डुबोई, अब तो डूब ही गयी।' यहीं प्रेमचन्द की होरी धनिया जैसे चरित्रों के मर्म में प्रवेश करने की क्षमता प्रकट होती है जैसी हम टॉलसटॉय या अन्य बड़े लेखकों के यहाँ देखते हैं। 'दोनों द्वार के सामने पहुँच गये। सहसा धनिया ने होरी के गले में हाथ डालकर कहा--देखो तुम्हें मेरी सौंह, उस पर हाथ न उठाना। वह तो आप ही रो रही है। भाग की खोटी न होती तो यह दिन ही क्यों आता।' आगे का दृश्य यह है -- 'होरी की आँखें आर्द्र हो गयीं। धनिया का यह मातृ-स्नेह उस अँधेरे में भी जैसे दीपक के समान उसकी चिंन्ता जर्जर आकृति को शोभा प्रदान करने लगा। दोनों ही के हृदय में जैसे अतीत यौवन सचेत हो गया। होरी को इस वीतयौवना में भी वही कोमल-हृदय बालिका नजर आई जिसने पच्चीस साल पहले उसके जीवन में प्रवेश किया था।'

लूकाच ने अपने एक निबन्ध में कहा है कि जीवन की आंतरिक कविता मनुष्य के संघर्ष में ही रूप ग्रहण करती है। जीवन की सार्थकता को सुरक्षित रखने में और गहनतर बनाने में यही कविता काम आती है। संघर्ष में ही होरी-धनिया इस आंतरिक कविता को अपने जीवन की सार-वस्तु के रूप में सुरक्षित रख पाये हैं। प्रेमचन्द अन्यत्र भी याद दिलाते हैं कि जहाँ सम्पत्ति की दीवार ऊँची होती गयी है वहीं दम्पति एक दूसरे से दूर होते गये हैं। उपर्युक्त प्रसंग 'गोदान ' के अविस्मरणीय प्रसंगों में है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहा जाय, यही वे मर्मिक स्थल हैं जहाँ लेखक की सहज वृत्ति रमी है और जो कथा के फैलाव को अन्तर्गठित करते हैं । शहरी कथा के भावहीन प्रसंगों से तुलना करके देखें तो यह फर्क और अधिक स्पष्ट दिखाई देगा। वहाँ सब कुछ सामान्य है, ऊपरी, सतही--यहाँ सब कुछ या बहुत कुछ विशेष--अन्तरंग और गहन! झुनिया भी सामान्य से विशेष हो गयी है। अनुभव-पकी झुनिया के जीवन में भी यह एक नया अनुभव घटित हुआ था। प्रेमचन्द यहाँ उसके इर्द-गिर्द जो वातावरण बनाते हैं वह परिस्थिति के मर्म में उनकी पैठ का उदाहरण है। 'दीवट पर तेल की कुप्पी जल रही और उसके मद्धिम प्रकाश में झुनिया घुटने पर सिर रखे, द्वार की ओर मुँह किये ; अंधकार में उस आनन्द को खोज रही थी जो एक क्षण पहले

अपनी मोहिनी छवि दिखाकर विलीन हो गया था।' झुनिया को संरक्षण देने के लिये होरी-धनिया को पूरे समाज से लड़ना पड़ा। वे जाति-बाहर कर दिये गये। जाति प्रधान समाज-व्यवस्था की निष्ठुर अमानवीयता को प्रेमचन्द-निराला ने एक ही तरह से पहचाना है। धनिया पंचायत के फैसले को चुनौती देती है--होरी अपने को बिरादरी का चाकर समझता है। फिर वही समक्षीकरण, तुलना, वि-सादृश्य! यह घटना ही गोबर का व्यक्तित्वान्तरण करनेवाली थी--उसे परिवार और समाज का ज्ञान कराने वाली। आगे फिर उसमें फर्क आया--शहरी रंग-ढंग और तरह-तरह के दबाव। परिवार से विच्छिन्नता। अलगाव। आकस्मिकता (Chance) प्रेमचन्द के कथा-विधान की परिचित युक्ति है। लूकाच ने ही अपने एक विश्लेषण में यह भी कहा है कि संयोग या आकस्मिकता न हो तो सारी कथा निष्क्रिय अमूर्तन लगने लगे। हाँ, संयोग होकर भी वह अपरिहार्य लगे--लगे कि और कुछ हो ही नहीं सकता--यहीं उसके उपयोग में सार्थक रचनादृष्टि का पता चलता है।

कठिन-से-कठिन दुःख में प्रकृति मनुष्य को किस तरह बल देती है--इसके प्रमाण भी प्रेमचन्द और निराला के यहाँ बहुत समानता लिये हुए हैं। गोबर-झुनिया के चले जाने से घर सूना हो गया है। गोबर जो कह-सुन गया उसकी तिक्तता जाते-जाते जायेगी। वह बच्चा भी छिन गया जो धनिया के लिए जीवनाधार बना था। होरी-धनिया में नोंक-झोंक हुई, फिर जैसे उन्होंने यथार्थ को सहने की आन्तरिक शक्ति अर्जित की। प्रेमचन्द लिखते हैं--'विनोद में दुःख उड़ गया। वही उसकी दवा है।' पर मुख्य प्रसंग तो आगे है। होरी खलिहान पहुँचा जहाँ दृश्य यह था--'रसिक बसन्त सुगन्ध और प्रमोद और जीवन की विभूति लुटा रहा था, दोनों हाथों से दिल खोलकर। कोयल आम की डालियों में छिपी अपनी रसीली मधुर आत्मस्पर्शी कूक से आशाओं को जगाती फिरती थी।.....नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोल देते थे। होरी आमों के बाग में पहँचा तो वृक्षों के नीचे तारे-से खिले थे। उसका व्यथित निराश मन भी इस व्यापक शोभा और स्फूर्ति में आकर गाने लगा--'हिया जरत रहत दिन रैन! ' होरी की जीवनीशक्ति का यही रहस्य है। उसकी ट्रैजिक कथा में जीवन-संघर्ष के कितने ही मधुर मर्मस्पर्शी प्रसंग जुड़े हैं जो उसकी गहरी जीवनासक्ति को प्रमाणित करते हैं।

'गोदान ' की कथा में इसके आगे भी, आते हुए पूँजीवाद और खत्म होते सामन्तवाद के गठजोड़ से निकले कथा-सन्दर्भ में बहुत कुछ जुड़ता रहता है जिसके चलते मूल समस्या पर ध्यान केन्द्रित करना कठिन होता है। सिवा होरी के अकेले होते जाने के,

टूटते जाने के! हालांकि प्रेमचन्द संकेत करते हैं कि शोषण-चक्र ने होरी को ही नहीं, पूरे गाँव को तोड़ा है--'जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गये हों और सारी हरियाली मुरझा गयी हो। जेठ के दिन हैं, अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है; मगर किसी के चेहरे पर खुशी नहीं है। बहुत कुछ तो खलिहानों में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है वह भी दूसरों का है। भविष्य अन्धकार की भाँति उनके सामने है।.....उनके जीवन में स्वाद का लोप हो गया है।' घटनाएँ हैं पर जीवन में कोई गति ही नहीं। मातादीन-सिलिया की कथा। बेटी के विवाह के लिए होरी पर कर्ज का बोझ। अन्ततः बेटी बेचने के लिए अभिशप्त होरी की असहायता। गोबर खन्ना की मिल में मजूरी करता है। मिल में हड़ताल। मन्दी बेकार का दौर। गोबर पर हमला। फिर जैसे सारा कथाजाल समेटा जा रहा है। खन्ना की मिल में आग लग जाती है। मालती के रंग-ढंग में परिवर्तन। मेहता सेवा-संकल्प की राह पर। कितने ही चरित्र महज अवधारणा होकर रह गये हैं। जहाँ रायसाहब के सारे मनसूबे पूरे हो रहे थे--बेटे के विवाह के सवाल पर संघर्ष। जैसे सारा जीवन ही उजड़ने लगा। मालती--अविवाहित मातृत्व की अनुभूति। मेहता-मालती सम्बन्ध निर्णायात्मक स्थिति में। मित्र रूप में ही रहने का प्रस्ताव-संकल्प मालती की ओर से। असीम तक पहुँचने का अवसर खो देने का डर मालती में--विवाह की कल्पना से। क्या प्रेमचन्द आगे आ रहे जैनेन्द्र को एक नयी विषयवस्तु दे रहे थे! दूसरी ओर होरी धनिया के छोटे-बड़े भौतिक दुःखों से निर्मित दाम्पत्य एक ट्रैजिक अन्त तक पहुँचकर प्रेमचन्द की मूल अन्तर्वस्तु और विचारधारा को निर्णायक स्थिति तक ले आता है। होरी ने कन्या बेची और रुपये प्राप्त किये। यह अपमान की पराकाष्ठा है। होरी के लिए प्रेमचन्द के शब्द हैं--'आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ है कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है उसके मुँह पर थूक देता है। xx उससे पूछो, कभी तुमने विश्राम के दर्शन किये, कभी तू छाँह में बैठा? उस पर यह अपमान। और वह अब भी जीता है, कायर, लोभी, अधम।' यह आत्मधिक्कार नाटकीय क्षण नहीं; ठोस वास्तविकता के त्रासद अनुभवों से पैदा हुआ है। यहाँ कोई बौद्धिक तर्क नहीं। पर जो है, वही हो सकता है। 'धनिया यन्त्र की भाँति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठण्डे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली--महाराज घर मे न गाय है न बछिया न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी।'

इस ढीले-ढाले कथातन्त्र में जरूर ही बहुत कुछ ऐसा है जो मूलकथा से बस यों ही जुड़ा है और आसानी से काट-छाँट के क्रम में अलग किया जा सकता है पर काट-छाँट प्रेमचन्द के अपने इस शिल्प-रूप की प्रकृति नहीं है। आकस्मिकताएँ हैं पर नाटकीय क्षण की चरम तीव्रता कहीं नहीं है। यहाँ तक कि होरी की मृत्यु भी धीरे-धीरे घटित होती है। कितनी ही बार उसके व्यक्तित्व का कोई-न-कोई सजीव अंश मर जाता है, निश्चेष्ट हो जाता है। इसी अर्थ में डॉ. रामविलास शर्मा को कहना पड़ा है--'गोदान की गति धीमी है। होरी के जीवन की गति की तरह। यहाँ सैलाब का वेग नहीं है, लहरों के थपेड़े नहीं हैं। यहाँ ऊपर से शान्त दिखने वाली नदी की भँवरें हैं जो भीतर-ही-भीतर मनुष्य को दबाकर तलहटी से लगा देती हैं और दूसरों को वह तभी दिखायी देता हे जब उसकी लाश उतराती हुई बहने लगे।' ('प्रेमचन्द और उनका युग ', पाँचवाँ संस्करण, पृष्ठ 97)।

कहने की जरूरत नहीं कि 'गोदान ' की संरचना पर विचार 'गोदान ' के ऐतिहासिक-सामाजिक सन्दर्भ को छोड़कर असम्भव है। महज शिल्पगत विशेषताओं या सीमाओं की कोटि बनाकर 'गोदान ' की संरचना के मर्म तथा वैशिष्ट्य को समझ पाना कठिन है। यह सवाल गैरजरूरी नहीं है कि 1936 में प्रकाशित 'गोदान' में होरी का संघर्ष, पराजय तथा निराशा का बोध आकस्मिक है या उसका ठोस सामाजिक-ऐतिहासिक आधार भी है। उपन्यास के वस्तु-रूप संगठन पर विचार करते हुए कहा गया है--कि वस्तु को निर्धारित करनेवाला तत्व तो है लेकिन वस्तु की ऐसी कोई अवधारणा नहीं है जिसके केन्द्र में स्वयं मनुष्य न हो। इस दृष्टि से 'गोदान ' की संरचना को संगठित करनेवाला और उसे सार्थक कलात्मक परिणति देने वाला सन्दर्भ है--होरी का संघर्ष, उसकी पराजय और उसकी निराशा। उपन्यास के रचना-समय को देखते हुए जिसके ऐतिहासिक-सामाजिक सन्दर्भ की कल्पना असम्भव नहीं है।